उपयोगी एवं संग्रहणीय पुस्तकें।

१	शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण	ले० पं० जुगलकिशोर जी,	)॥
२	विवाह क्षेत्र प्रकाश	,, ,, ,,	।≈)
३	विष्णुकुमार	ले० पं० जुगमन्दरदासजी,	≡)
४	जैन जाति सुदशा प्रवर्तक	,, बा० बाबू सूरजभानजी,	–)
५	मंगलादेवी	,, ,, ,,	–)
६	कुवारों की दुर्दशा	,, ,, ,,	–)
७	गृहस्थधर्म	,, ,, ,,	)॥
८	उजले पोश बदमाश	,, अयोध्या प्रशादजी गोयलीय	–)
९	अबलाओं के आँसू	,, ,,	।)
१०	नित्यप्रार्थना	,, जैन कवि ज्योतिप्रसादजी,	)।
११	शारदा स्तवन	,, कल्याणकुमारजी ,, "शशि"	):
१२	चर्चासागर समीक्षा	,, पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ,	।।≈)
१३	हिन्दी भक्तामर	....	)॥
१४	प्रार्थना स्तोत्र	जैन विद्यार्थियों के हितार्थ,	)।
१५	त्याग मीमांसा	ले० पं० दीपचन्दजी वर्णी	–)
१६	सुधार संगीत माला	ले० पं० भूगमलजी मुशरफ	)॥
१७	संसारदुखदर्पण	,, जैन कवि ज्योतिप्रसादजी,	)॥

नोटः—एक रुपये से कम की पुस्तकें मगाने वालों को पोस्टेज सहित टिकिट भेजना चाहिये।

मिलने का पताः—

जौंहरीमल जैन सराफ,

दरीबा कलां—देहली।

जे० बी० प्रिंटिङ्ग प्रेस, चांदनी चौक, देहली।

ॐ

दस्साओंका पूजाधिकार

लेखक:—

पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ—सूरत।

[संपादक-वीर और चर्चासागर समीक्षा, दानविचार समीक्षा, विजातीय विवाह मीमांसा, जैन धर्म की उदारता, परमेष्ठि पद्यावली तथा चारुदत्त चरित्र आदि के लेखक ।]

प्रकाशक:—

ला० जौहरीमल जैन सराफ़

दरीबा कलां, देहली ।

प्रथमावृत्ति	सन १९३५	मूल्य
२०००	वीर निर्वाण संवत् २४६२	—)

नयादत्त प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा ।

दो शब्द

स्वर्गीय तिलक ने फरमाया था कि "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है" क्योंकि हम भारतवासी हैं और भारतवर्ष हमारा देश है।

जैसे प्रत्येक देशवासी का अपने देश में स्वराज्य पाना पैदा-यशी हक़ है, ठीक ऐसे ही प्रत्येक धर्मावलम्बी का अपने धर्म की समस्त क्रियाओं का पालन करना उसका धार्मिक अधिकार है। किसी की धार्मिक क्रियाओं में बाधा उत्पन्न करना वास्तव में उसके धार्मिक अधिकारों में डाका डालना है। प्रत्येक धर्म के धर्मा-चार्यों ने अपने २ धर्म की कुछ न कुछ आवश्यक क्रियायें ऐसी निश्चित की हैं कि जिनका पालन करना उन धर्मावलम्बियों का आवश्यक कर्तव्य होजाता है—वैसे ही दि० जैन धर्माचार्यों ने श्रावकों के लिये षट् आवश्यक क्रियाओं का प्रतिपादन किया है। जिनमें प्रथम अर्थात मुख्य क्रिया देव पूजन है। देव पूजन का महत्व जैन शास्त्रों में भली भांति वर्णन किया है जिससे सभी दि० जैन परिचित हैं और अपनी इस मुख्य क्रिया का पालन करते हुये सदैव देखे जाते हैं।

धर्माचार्यों की आज्ञा है कि प्रत्येक श्रावक के लिये षट् आवश्यक क्रियाओं का पालन करना बहुत ही जरूरी है अर्थात् जो श्रावक हैं वह श्रावक की क्रियाओं का पालन अवश्य ही करें धर्मगुरुओं की ऐसी आज्ञा होने पर भी आश्चर्य है कि दस्सा कहे जाने वाले श्रावकों की आवश्यक क्रियाओं के पालने में बीसा कहे जाने वाले श्रावक क्यों बाधा डालते हैं। अर्थात देव पूजन जैसे महान कार्य से क्यों रोकते हैं। देव पूजन भावों की शुद्धि

के लिये एक श्रेष्ठ उपाय है। जैनों की पूजन क्रिया अन्य मतावलम्बिओं की पूजन क्रिया के समान नहीं है। अर्थात् यहां पर देवताओं को भोग नहीं लगाया जाता-यहां तो अपनी आत्मशुद्धि के लिये देव पूजन है। आत्मशुद्धि जो कोई भी करना चाहे वह कर सकता है। फिर किसी की आत्मशुद्धि के द्वार को बंद करना कैसे उचित कहा जा सकता है!

संसारी आत्मायें अनादिकाल से संसार में भ्रमण कर रही हैं आवागमन के अनेक दुःख भोग रही हैं और व्याकुल हो रही हैं। फिर जिस किसी आत्मा को शुभ के उदय से अपने कल्याण का समागम मिल गया है तब उसे अपना कल्याण अवश्य ही करना चाहिये। उसके कल्याण मार्ग में रोड़ा अटकाना किसी प्रकार भी न्याय युक्त नहीं कहा जा सकता। बस, हम तो इतना ही कहते हैं कि दस्सा जैनों के कल्याण मार्ग में रोड़ा अटकाने वालों को यह विचार करना चाहिये कि यदि यह सलूक (जो हम दस्साओं के साथ कर रहे हैं)। दूसरों द्वारा हमारे साथ किया जाय तब हमको कहां तक सहन होगा या हो सकता है!

श्री धर्मबंधु पं० परमेष्ठीदास जी ने दस्साओं की पूजन क्रिया को पुष्ट करने के लिये यह जो लेख लिखा है उसे हमने आद्योपान्त पढ़ा है। हम उससे सर्वथा सहमत हैं। और हार्दिक इच्छा करते हैं कि सभी श्रावक अपनी धार्मिक क्रियाओं को स्वतन्त्रता के साथ मन, वचन, काय द्वारा पालन करते हुये अपना वास्तविक कल्याण करें-जिससे जैन धर्म का भले प्रकार उद्योत हो।

प्रेमभवन देवबन्द
४-१२-३५

ज्योतिप्रसाद जैन
भू० पू० सम्पादक जैन प्रदीप

॥ परमेष्ठिने नमः ॥

दस्साओं का पूजाधिकार

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात् ।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥

—पञ्चाध्यायी ।

जैन समाज के लिए यह दुर्भाग्य का विषय है कि फिर से दस्साओं के पूजाधिकार को लोप करने का प्रयत्न हो रहा है। दिगम्बर जैन पचायत सहारनपुर की ओर से १० पृष्ठ की एक पुस्तक अभी ही प्रगट हुई है । उसका लम्बा नाम है "धार्मिक मर्यादा पर दृष्टिपात और कतिपय भाइयों की अनधिकार चेष्टा।" वास्तव में इतने बड़े नाम वाली किंतु छोटी सी पुस्तक में न तो कोई शास्त्रीय प्रमाण है और न बुद्धिगम्य तर्क ! फिर भी इस पुस्तक द्वारा सर्व साधारण जनता पर बुरा असर न पड़े और कतिपय (विरोधी) भाइयों की 'अनधिकार चेष्टा' का वास्तविक प्रदर्शन हो सके इस लिये मुझे 'दस्साओं का पूजाधिकार' लिखने की आवश्यक्ता हुई है ।

यह बात तो सभी जानते हैं कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन; किसी भी जैन शास्त्र में जैनों के दस्सा वीसा भेद का कथन है ही नहीं। शास्त्रों में तो मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण या जातियां ही हैं। बाद में जैनों में जब जैनधर्म के उपासक प्रायः वैश्य ही रह गये तब खण्डेलवाल, अग्रवाल, पद्मावती पुरवाल, परवार, गोलालारे, गोलापूर्व, हूमड़, नरसिंहपुरा आदि उप जातियां बनीं। और फिर उसके बहुत समय बाद अभी-

अभी दस्सा बीसा जाति या भेद की कल्पना हुई है। यह कल्पना न तो शास्त्रीय है और न प्राचीन बुद्धिमान पुरुषों द्वारा निर्माण की हुई! यह कल्पनायें तो ज्यों ज्यों संकुचित भावना होती गई त्यों त्यों बढ़ती ही चली गई।

यह दस्सा बीसा का भेद मात्र जैनों में ही हो सो बात नहीं है। इधर गुजरात में तो प्रायः सभी ब्राह्मण और वैश्यों की जातियों में यह भेद पाये जाते हैं। जैसे दस्सा हूमड़ बीसा हूमड़, दस्सा नरसिंहपुरा बीसा नरसिंहपुरा, दस्सा मेवाड़ा बीसा मेवाड़ा, दस्सा श्रीमाली बीसा श्रीमाली, दस्सा लाड बीसा लाड, दस्सा पोरवाड़ बीसा पोरवाड़ इत्यादि।

गुजरात में यह दस्सा बीसा की कल्पना सभी जातियों में होते हुये भी उत्तर भारत की भांति उनमें नीच ऊंच की कल्पना नहीं है। यू० पी० और कहीं कहीं मध्य भारत में दस्सा भाइयों को निराधार ही नीच कल्पित कर लिया गया है। और बीसाओं को बड़ी नाक वाला माना गया है। किन्तु वास्तव में यह कल्पना बिलकुल ही विचित्र है। कारण कि इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं है कि जिन्हें लोग दस्सा कहकर सदोष मान रहे हैं उनने या उनके पूर्वजों ने अथवा उनकी परम्परा में किसने क्या पाप किया था। उसी प्रकार यह भी कोई दावा नहीं कर सकता कि सभी बीसाओं की परम्परा बिलकुल ही निर्दोष, शुद्ध और धर्मात्मा को अवतार रूप ही चली आ रही है। कारण कि "कालेननादिना गोत्रे स्खलनं क न जायते ?" अर्थात् इस लम्बे समय में न जाने कब किसके गोत्र में कोई पतन हो गया होगा। तब अपनी परम्परा की सर्वथा शुद्धि का अभिमान करके दूसरों को पतित मानना कहां तक उचित है ? जैनाचार्यों ने तो कहा है कि:—

संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तात्विका यस्यां सा जातिर्महती मता॥

अर्थात्—जिस जाति में संयम, नियम, शील, तप, दान, दम और दया वास्तव में पाई जाती है वही जाति बड़ी है। चाहे वह दस्सा हो या बीसा, किन्तु इतने गुण जिसमें होंगे वही महान है और बीसा होने पर भी यदि यह गुण किसी में नहीं हैं तो वह नीच है पतित है।

किसी जाति मात्र के लिये शुद्धता या अशुद्धता का प्रमाण पत्र नहीं है। यदि दस्साओं को पतित और बीसाओं को शुद्ध मानने की कल्पना सत्य है तो यह आचार्य वाक्य असत्य हो जायगा कि:—

"गुणैः सम्पद्यते जातिगुणध्वंसैर्विपद्यते।"

अर्थात् गुणों के द्वारा जाति उच्च होती है और गुणों के नष्ट होने पर जाति भी नष्ट होकर पतित बन जाती है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जिन दस्साओं को उनकी परम्परा के कारण दूषित कल्पित किया जाता है वे यदि सदाचारी हैं, मूलगुणधारी हैं, व्रतधारी हैं, धर्म पर श्रद्धा रखते हैं तो वे किसी भी बीसा से कभी कम नहीं हैं। और यदि कोई बीसा अनाचारी है, अभक्ष भक्षी है, शिथिलाचारी है, गुण हीन है तो उसकी जाति नष्ट हो जाती है। वह नीच है। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि कितने ही बीसा भाई गुप्त या खुले पाप करते हुये भी मूंछों पर ताव देते हुये समाज की छाती पर ताण्डव नृत्य करते रहते हैं और शुद्ध, सदाचारी, और व्रती दस्सा भाई जिन मन्दिर के दर्शन पूजन को तरसते हैं। उन्हें मन्दिर में नहीं आने दिया जाता, दर्शन नहीं करने दिये जाते, पूजा नहीं करने देते हैं। इस मिथ्याभिमान का

क्या परिणाम होगा सो अभी नहीं कहा जा सकता, फिर भी इतना तो निश्चित है कि इससे धर्म की हानि हो रही है और समाज का पतन हो रहा है।

यदि विरोधी पक्ष के कथनानुसार थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि दस्सा लोग पतित हैं तो भी उन्हें सदा पतित ही बनाये रहना कहां की बुद्धिमानी है ? क्या पतित कभी पावन नहीं हो सकते ? क्या पापों का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता ? ऐसा कौनसा पाप है जिसका प्रायश्चित्त नहीं होता हो ? दस्सा भाइयों ने ऐसा कौनसा पाप किया है जिसकी शुद्धि आज तक नहीं हो पाई और अभी भी नहीं की जा सकती ? प्रायश्चित शास्त्रानुसार व्यभिचारी अनाचारी, हत्यारे, खूनी, मद्य मांस सेवी और बुरे से बुरे तथा भयानक से भयानक पाप करने वालों की भी शुद्धि करने का विधान है फिर क्या कारण है कि दस्साओं को पतित कहकर पूजादि से रोका जाता है। यदि किसी में साहस हो तो वह सिद्ध करे कि दस्साओं ने क्या पाप किया है ? यह सिद्ध हो जाने पर उन्हें प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध किया जा सकेगा। श्री जिनसेनाचार्य ने स्पष्ट कहा है कि:—

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं संप्राप्तदूषणं।
सोऽपि राजादि सम्मत्या शोधयेत् स्वं यदा कुलं॥

—आदिपुराण पर्व ४०

इससे सिद्ध है कि यदि दस्साओं का कुल एक बार दूषित भी हो तो उसे राज्य या पंचों की सम्मति से शुद्ध करना चाहिये और बीसाओं की भांति पूजादि का पूर्ण अधिकार देना चाहिये।

श्री रविषेणाचार्य के कथनानुसार कोई भी जाति (मात्र दस्सा होने से ही) गर्हित नहीं है। किन्तु उसके गुणों पर विचार

करना चाहिये। गुण ही कल्याण करने वाले होते हैं। यथा—

"न जातिर्गर्हिता काचित् गुणाः कल्याणकारणं।"

दूसरी बात यह है कि यदि दस्साओं को पतित ही माना जाय तो इसका क्या प्रमाण है कि सभी बीसा सदाचारी के अवतार हैं। दस्सापन और बीसापन का कोई निशान शरीर पर तो मालूम नहीं होता कि जिससे उसकी पहिचान की जा सके। लोगों को अपनी कुलपरम्परा पर अभिमान रहता है सो यह पहिले ही बताया जा चुका है कि 'कालेन नादिना गोत्रे स्खलनंक न जायते ?" अथवा—

वर्णाकृत्यादि भेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधान प्रवर्तनात्॥

—उत्तरपुराण

अर्थात् शरीर पर वर्ण जाति-दस्सा बीसा, आदि के कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते हैं। ब्राह्मणों को यदि अपनी शुद्धि का अभिमान हो तो वह व्यर्थ है। कारण कि ब्राह्मणों में भी शूद्रादि द्वारा गर्भाधान की प्रवृत्ति देखी जाती है। इस प्रकार जब ब्राह्मणी की सदा शुद्धि का दावा नहीं किया जा सकता तब सभी बीसा अनादिकाल से संपूर्ण शुद्ध हैं और सभी दस्सा सदा से अशुद्ध हैं। यह गर्व करना भी सर्वथा मिथ्या है।

इस लिये विवेकी पुरुषों का कर्तव्य है कि वे दस्सा मात्र को पतित मानने की भावना बदल देवें। और जिनकी यह दृढ़ धारणा ही हो तथा उनके पास दस्साओं के पतन का प्रमाण हो तो उन्हें उस पाप का प्रायश्चित्त देकर अपने समान बना लेना चाहिये। यही जैन मार्ग है और यही विवेकियों का कर्तव्य है। व्यर्थ ही किसी को धर्म सेवन से रोकना उचित नहीं है। जैनाचार्यों ने तो

सभी जीवों को मन वचन और काय से धर्म सेवन करने का अधिकारी घोषित किया है। यथा—

"मनो वाक्काय धर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः"

तब फिर किसी के धर्म सेवन में बाधा डालना घोर अन्तराय-कर्म का बंध करना है और स्थितिकरण अंग का नाश करना है। विवेकी जैनों का तो यह कर्तव्य होना चाहिये कि यदि कोई भृष्ट भी होगया हो, दुराचारी हो, पातकी हो तो उसे धर्म के मार्ग में पुनः लगादे। यथा—

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात्।
भृष्टानां स्वपदात् तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः॥

अर्थात्— अपने धर्म मार्ग या पद से जो भृष्ट हो गये हैं— पतित होगये हैं उन पर अनुग्रह करके उन्हें फिर से उसी पद में स्थिर करदेना उसी धर्म मार्ग में लगा देना ही सच्चा स्थितिकरण है। ऐसा न करके अपने धर्म बन्धुओं (दस्सा भाइयों) को धर्म सेवन करने से रोकना और उसके लिये प्रस्ताव करके उन्हें धर्म सेवन का अनधिकारी घोषित करना और इतने पर भी अपने को धार्मिक मर्यादा का रक्षक मानना भयंकर आत्मवंचना है।

युक्ति निराकरण।

दिगम्बर जैन पंचायत सहारनपुर ने जो 'बड़ौत के कतिपय भाइयों की अनधिकार धर्म विरुद्ध चेष्टा (!) नामक ट्रेक्ट छपाया है उसमें कोई शास्त्रीय प्रमाण या मजबूत दलीलें नहीं हैं यह तो मैं पहिले ही लिख आया हूं। फिर भी उसमें जिन युक्तियों को देख कर आत्म संतोष मान लिया गया है उन पर विचार किया जाता है।

(१) युक्ति—एक ही क्रिया भिन्न २ फल देती है। जिस क्रिया के द्वारा श्रावक पुण्यबंध करते हैं उसी के द्वारा मुनि नर्क के पात्र होते हैं और मुनि जिससे पुण्यबंध करते हैं उन्हीं को धारण करके गृहस्थ व्यवहार भ्रष्ट होजाता है। इस लिये पदस्थानुसार क्रिया करनी चाहिये।

निराकरण—यह बात ठीक है कि मुनि और श्रावक की कितनी ही क्रियायें एक दूसरे के लिये विधेय नहीं हैं किन्तु अनेक ऐसी भी क्रियायें हैं जिन्हें दोनों कर सकते हैं। जैसे दर्शन स्वाध्याय आदि किन्तु इससे किसी को भी पापबंध नहीं होता है। जिन क्रियाओं को परस्पर एक दूसरे नहीं कर सकते उनमें सारंभ निरारंभ आदि कारण हैं। जैसे मुनिराज आरंभी कार्य नहीं करते हैं इस लिये वे अष्ट द्रव्य से पूजा नहीं कर सकते। किन्तु श्रावक (चाहे दस्सा हो या बीसा) सभी आरंभी क्रियायें करते हैं इस लिये वे सभी पूजा कर सकते हैं। उन्हें ऐसा करने से पापबंध नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि मुनि और श्रावक में जैसा अन्तर है वैसा भेद दस्सा और बीसा श्रावकों में नहीं है। धर्म सेवन का जितना अधिकार बीसा भाइयों को है उतना ही दस्सा भाइयों को भी है। इस लिये प्रथम युक्ति निःसार ही है।

(२) युक्ति—आगम प्रणीत मर्यादा के विरुद्ध क्रिया करना जिनाज्ञा उल्लंघन करना है। जब पूज्य और पूज्यक के वचनों में ही श्रद्धान नहीं है तब उनकी पूजा करने का कोई अर्थ नहीं होता है।

निराकरण—यही बात तो अक्षरशः दस्सा भाइयों की तरफ से भी कही जा सकती है। मैं आगे चलकर यह बता दूंगा

कि दस्सा भाइयों को जिन पूजा से रोकने वाले जिनाज्ञाका उल्लंघन कर रहे हैं या पूजा करने वाले दस्सा भाई ? यह बात निश्चित है और शास्त्र सम्मत है कि दस्सा भाइयों को पूजा करने का उतना ही अधिकार है जितना कि बीसा भाइयों को।

यदि दस्साओं के पूजा करने से जिनाज्ञा का लोप होता है और पाप का बंध होता है तब तो गुजरात के अधिकांश जैनी आप लोगों की दृष्टि में जिनाज्ञालोपी, मिथ्यात्वी और पापी ठहरेंगे। कारण कि मैं अपनी आंखों से नित्य देखता हूं समस्त गुजरात में दस्सा बीसा भाइयों के संयुक्त मन्दिर हैं। सभी एक साथ पूजा करते हैं। हमारे यहां सूरत में भी दस्सा हूमड़ और बीसा हूमड़ भाइयों के संयुक्त मंदिर हैं। सभी लोग एक साथ मिलकर दर्शन, पूजा, आरती और सभी धर्म कार्य करते हैं। न तो कोई किसी को रोकता ही है और न रोकने का कोई कारण ही है। अनेक दस्सा भाइयों ने जिनमंदिर भी बनवाये हैं, वेदी प्रतिष्ठायें भी की हैं और उसमें दस्सा बीसा सभी शामिल होते हैं। तब क्या आप उन सबको जिनाज्ञा लोपी और पापी कहने का दुस्साहस करेंगे ? अपने समुदायको धर्मात्मा और दूसरों को पापी मानने की बुद्धि का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

(३) युक्ति—जिनागम में जाति पतित, अकुलीन इत्यादि के लिये जिनार्चन का निषेध किया है। ऐसे लोगों को रोकना धर्मसंगत है।

निराकरण—यदि आपके इस निषेध वाक्य को थोड़ी देर के लिये सत्य भी मान लिया जाय तो यह कहना कठिन है कि सभी दस्सा भाई जाति पतित और अकुलीन होते हैं। गुजरात प्रान्त में दस्साओं को जाति पतित या अकुलीन कहने पर लेने के

देने पड़ जायेंगे। अमुक प्रान्त के कुछ बीसा भाई अपने ही जैन दस्सा भाइयों को बिना कोई पुष्ट प्रमाण बताये जाति पतित या अकुलीन कहने लगें तो इस स्वेच्छाचारिता को रोकने का क्या प्रमाण है? जिन दस्सा भाइयों को पूजादि से रोका जाता है उनकी अकुलीनता सप्रमाण सिद्ध करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी को जाति पतित माना भी जाय तो वह किसी पाप करने के कारण ही जाति पतित किया गया होगा। किन्तु ऐसे पापियों के लिये पूजा करने का शास्त्रों में निषेध नहीं प्रत्युत विधान पाया जाता है। यथा:—

ब्रह्मघ्नोऽथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्व पापकृत्।
जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणम्॥

—पूजा सार।

अर्थात—जिसने ब्राह्मण की हत्या की हो, गौहत्या की हो, चोरी की हो या भयंकर से भयंकर सभी पाप किये हों। वह जिनेन्द्र भगवान के चरणों की भक्तिभाव पूर्वक चन्दनादि पुष्पों से पूजा करने पर तत्क्षण उन पापों से मुक्त हो जाता है।

इससे सिद्ध है कि कितना ही पतित या पापी व्यक्ति हो उसकी पातक मुक्ति का एक मात्र उपाय जिन पूजा है। किन्तु आश्चर्य है कि जो बीसा भाई निर्दोष दस्सा भाइयों को पतित कहने का साहस कर रहे हैं वही उन भाइयों को पूजा करने से रोकते हैं और उनके लिये पूजा करने की स्पष्ट आज्ञा होने पर भी उन्हें शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करने वाला मान रहे हैं। मैं अपने उन बीसा भाइयों से पूछता हूँ कि क्या आप अपने दस्सा भाइयों को ब्रह्मघाती गौघाती आदि हत्यारों से भी अधिक पापी मानते हैं? यदि नहीं तो उन्हें पूजा करने से क्यों रोका जाता है? और यदि इनको भयंकर

पापी मानते भी हों तो उनकी पाप मुक्ति के लिये ही सही उन्हें पूजा करने की दूनी आज्ञा देनी चाहिये । जिससे उनका पाप दूर होसके । जिन्हें आप लोग पतित मान रहे हैं उन्हें यदि पूजा दिन करने दी जायगी तो ये पाप मुक्त कैसे होंगे ? किसी गड्ढे में गिरे हुये आदमी को हस्तावलम्बन देकर निकालना चाहिये या उससे उसी में पड़ा पड़ा मरने देना चाहिये ? कहिये, मानव धर्म क्या है और आपका कर्तव्य क्या है ?

(४) युक्ति—यदि मुनि भी अपने पदस्थ के प्रतिकूल-क्रिया करे तो उसको भी रोकना प्रत्येक धर्मज्ञका कर्तव्य है ।

निराकरण—यह ठीक है । किन्तु दस्साओं द्वारा पूजा की जाना पदस्थके प्रतिकूल नहीं है, किन्तु उनके पदके उतने ही अनुकूल है जितनी कि बीसाओंके । कारण कि दोनों ही समान आचरण वाले हैं, शुद्ध हैं, धर्मात्मा हैं और विवेकी हैं । यदि थोड़ी देर के लिये दस्सा भाइयों को विरोधी सज्जनों की दृष्टि मेंपतित भी मान लिया जाय तो भी जिनपूजा करना उनके पदके अनुकूल है । यथा:—

जिन पूजा कृता हन्ति पापं नाना भवोद्भवम् ।
बहुकालचितं काष्ठराशिं वन्हिमिवाखिलम् ।।

धर्मसंग्रह श्रावकाचार ।

अर्थात—जिन पूजा करने से इस जन्मके ही नहीं किन्तु जन्म जन्मांतर के संचित पाप इस प्रकार भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि में लकड़ियों का समूह जलकर भस्म हो जाता है । तात्पर्य यह है कि यदि आप दस्साओं को पापयुक्त मानते हैं तो उनके पाप को नष्ट करने के लिये उन्हें जिन पूजा से नहीं रोकना चाहिये जिसका कि उन्हें अधिकार प्राप्त है ।

(५) युक्ति—जिन्हें पूजाधिकार नहीं है वे भाव पर्वक

जिनदर्शन, जाप्य, शास्त्र श्रवण द्वारा ही विशेष पुण्योपार्जन कर सकते हैं न कि अष्ट द्रव्य की पूजा से ! पुण्य पाप का बंध भावानुसार ही होता है !

निराकरण—इस युक्ति द्वारा आप दस्साओं को पूजाधिकारी न मानकर भाव पूर्वक जिन दर्शन आदि की सलाह दे रहे हैं। उसमें भी भाव पूजा करने तक की उदारता आप नहीं बता सके हैं। एक तो बात यह है कि दस्साओं को द्रव्य पूजा अनधिकारी मानना ही अनुचित है। और यदि आपके कथनानुसार मान भी लिया जाय तो आश्चर्य यह है कि आप भाव पूजा की अपेक्षा द्रव्य पूजा को विशेष महत्व कैसे दे रहे हैं ? कारण कि जिन्हें आप भाव-पूजा करने की अनुमति देते हैं उन्हें द्रव्यपूजा करने का निषेध कर रहे हैं। और जब आप भावानुसार ही पुण्य पाप का बंध मान रहे हैं तब द्रव्य पूजा से दस्साओं को क्यों रोकते हैं ? आप के भावपूजा के सिद्धान्त में ही शब्द का प्रयोग होने से तो स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य पूजा को यदि दस्सा भाई करें तो उन्हें पापबंध कदापि नहीं हो सकता। कारण कि पाप पुण्य का कारण भाव ही है। आश्चर्य है कि आप अनिश्चित सिद्धान्त होने के कारण एक जगह भावपूजा को महत्व दे रहे हैं दूसरी जगह द्रव्यपूजा को भावपूजा से बढ़कर मान रहे हैं।

(६) **युक्ति**—गुणों की समानता में ही अधिकार की समानता हो सकती है ! जैसे एक घोड़ा एक हजार रुपये में बिकता है तो दूसरा पचास रुपये में भी नहीं बिकता घोड़ों के गुणों में नस्ल का शुद्ध होना सर्वोच्च गुण है। उसी प्रकार मनुष्यों में सजातीयता सर्वोच्च गुण है। जो अधिकार सजाति को प्राप्त हैं वह जाति पतित को कदापि नहीं हो सकते।

निराकरण—गुणों की समानता तो एक बीसा की दूसरे बीसा के साथ भी नहीं है फिर भी वे पूजादि में समानाधिकारी हैं। शुद्ध खण्डेलवाल, अग्रवाल, परवार आदि और दक्षिण के चतुर्थ जैन जिनमें विधवा विवाह प्रचलित है इनको आप समान गुण वाला कदापि नहीं मानेंगे। और चतुर्थों को आप शुद्ध नस्ल वाला भी नहीं मानेंगे। किन्तु आपको और इनको पूजाधिकार तो समान रूप से प्राप्त है। वे भी नित्य अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं और खण्डेलवाल आदि भी करते हैं। यहां तक कि एक दूसरे के मंदिरों में जाकर पूजा करते हैं। कहीं कहीं तो इन असमान गुणों वाले खण्डेलवाल आदि और चतुर्थ आदि को एक साथ ही पूजा करने का अवसर आ जाता है। तब क्या आप उन्हें पूजाधिकारी नहीं मानते हैं। चतुर्थ लोगों को पूजा से रोकने का किन्हें साहस है?

इस प्रकार की असमानता दस्सा और बीसाओं में सिद्ध करना कठिन है। यदि आपके पास कोई प्रमाण है तो अपनी पुस्तक में प्रगट क्यों नहीं किये? यदि दस्सा बीसाओं में आप गुणों की असमानता मानते ही हों तो उससे भी बढ़कर असमानता एक बीसा से दूसरे बीसा में पाई जाती है। कारण कि सब का आचरण, व्यवहार और ज्ञान आदि एकसा नहीं होता।

रहा घोड़े की नस्ल शुद्धि की बात, सो इतने मात्र से ही उसकी कीमत हज़ार रुपया नहीं हो जाती है। किन्तु उसमें घोड़े के योग्य गुण देखे जाते हैं। मनुष्यों में कीमती और कम कीमती घोड़े जैसा भेद नहीं है। और यदि माना भी जाय तो किसी दस्सा को जब ५००) मासिक वेतन मिलता है तब किसी बीसा को १०) मासिक मिलना भी कठिन हो जाता है। कोई दस्सा सदाचारी, गुणवान और धर्म प्रचारक हो सकता है तब कोई बीसा दुराचारी,

दुर्गुणी और धर्म-ध्वंसक भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि दस्सा या बीसा होने से ही किसी में दोष या गुण का ठेका नहीं हो जाता है। वह तो अपनी अपनी व्यक्तिगत योग्यता पर आधार रखता है।

दूसरी बात यह है कि दस्साओं की नस्ल और सज्जातीयता बीसाओं से किसी भी कदर कम नहीं है, गुजरात में दस्सा बीसाओं के कई हजार घर हैं। उनमें परस्पर नस्ल या सज्जातीयता का न तो कोई भेद है न कहीं भी होना चाहिये। आज भी प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दोनों के आचार विचार सर्वथा समान हैं।

(७) **युक्ति**—हम यह अवश्य मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य ही क्या तिर्यञ्च भी जिन धर्म धारण कर सकता है। किन्तु अपनी अपनी मर्यादा के अन्दर ही रह कर।

निराकरण—मैं भी तो यही कहता हूं कि तिर्यंच मुनि नहीं हो सकता, कारण कि मुनि होने में मात्र नग्नता ही कारण नहीं है और मुनि होना उसकी योग्यता के बाहर है। मगर पशुओं की समानता दस्साओं के साथ नहीं की जा सकती। दस्साओं का धर्म धारण करना बीसाओं की मर्यादा से किसी प्रकार भी कम नहीं है। मैं आगे अनेक शास्त्रीय उदाहरणों द्वारा यह बताऊंगा कि बहुत से दस्साओं ने मुनि दीक्षा तक ली थी।

दूसरी बात यह है कि जब पशु भी जिन पूजा कर सकते हैं तब दस्सा जैनों को जिन पूजा का अनधिकारी बताना हृदय की भयंकर संकीर्णता है। कथा ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि एक मेंढक मुखमें कमल लेकर महावीर स्वामी की पूजा करने के लिये समवशरण में जारहा था मार्ग में हाथी के पैर के नीचे दबकर मरगया। और जिन पूजा की भावना को लेकर मरा हुआ

लिये वह स्वर्ग में देव हुआ। यदि तिर्यचों द्वारा जिन पूजा करना मर्यादा के बाहर होता तो वह मेंडक स्वर्ग में नहीं जाता।

इसी प्रकार पुण्याश्रव कथा कोष में एक हाथी की कथा है। वह हाथी प्रतिदिन अपनी सूंड़में तालाबसे पानी भर कर लेजाता था और भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमाका अभिषेक करता था। तथा एक कमल का फूल चढ़ाकर भगवान की पूजा करता था। इसके प्रभाव से वह मर कर सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ।

इससे सिद्ध है कि तिर्यचों द्वारा भी जिन पूजा करना जब मर्यादा के अन्दर है और स्वर्ग सुखदायी है तब मनुष्यों (दस्सा भाइयों) को जिन पूजा करना मर्यादा के बाहर बताना कौनसी बुद्धिमानी है? क्या दस्साओं का दरजा पशुओं से भी नीचा है? यदि विवेक तथा उदारता से और शास्त्रीय आज्ञाओं एवं कथाओं के मर्म को समझकर काम लिया जाय तो ऐसी भूल कदापि नहीं हो सकती।

(८) युक्ति—शूद्र क्षुल्लक तक ही हो सकता है और लोहे के पात्र रखकर अपनी जाति को नहीं छिपाता। स्त्री पांचवें गुण स्थान तक ही जा सकती है इस प्रकार धर्म की मर्यादा नियत है।

निराकरण—समझ में नहीं आता कि सहारनपुर के अज्ञातनाम लेखक ने ऐसी असंबद्ध बातों से क्या सिद्ध करना चाहा है। ऐसी तो सैंकड़ों नियामक बातें और भी लिखी जा सकती हैं, किन्तु इससे दस्साओं का पूजाधिकार कैसे मिट सकता है? यदि शूद्र क्षुल्लक तक ही हो सकता है और स्त्रियां पांचवें गुणस्थान तक ही जा सकती है तो इसका यह अर्थ तो है नहीं कि शूद्र और स्त्रियों को पूजाधिकार ही नहीं है। शूद्रों और स्त्रियों के पूजाधिकार संबंधी अनेक प्रमाण शास्त्रों में पाये जाते हैं।

धर्म संग्रह श्रावकाचारमें पूजक और पूजकाचार्य में से प्रथम पूजक का लक्षण करते हुये "ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण्यआद्यः शीलव्रतान्वितः।" इत्यादि लिखकर नित्यपूजक में चारों वर्णोंको अधिकारी बताया है। इसी प्रकार पूजासार ग्रन्थों में भी नित्यपूजक का लक्षण करते हुये लिखा है कि—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽद्यः सुशीलवान्।
दृढ़व्रतो दृढ़ाचारो सत्यशौच समन्वितः॥

इसमें दृढ़व्रती, दृढ़ाचारी, और सत्य शौच के धारक प्रत्येक सुशील ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को प्रथम—पूजक बताया है। इसी प्रकार कथा ग्रन्थों में भी शूद्रों द्वारा जिन पूजा की जाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

गौतमचरित्र के तीसरे अधिकार में तीन शूद्र कन्याओं को कथा है। उनके घर में मुर्गियां पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थी और उनका रहन सहन आकृति आदि बहुत ही खराब थी। फिर भी उनने मुनिराज के आदेशानुसार लब्धि विधान व्रत किया और जिनमन्दिर में जाकर भगवानकी बड़ी पूजा की। यथा:—

कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रुर्मनोवाक्काय शुद्धितः॥ ५६॥

तात्पर्य यह है कि यदि शूद्रों को मुनि न होने की आज्ञा हो और वे क्षुल्लक तक ही पहुंच सकते हों तो उन्हें पूजा करने की तो मनाई नहीं है? जब हीन कुली शूद्र कन्यायें जिन मन्दिर में जाकर बड़ी पूजा कर सकती हैं तब दस्सा जैनों को पूजा से रोकना कहां की बुद्धिमानी है? क्या हमारे दस्सा जैन भाई उन मुर्गी पालने वाली शूद्र कन्याओं से भी गये बीते हैं। पक्षपात को छोड़

कर सत्य को पहिचानो। यही जैन धर्म का उपदेश है। इसी प्रकार गायें चराने वाले एक ग्वाला द्वारा जिन पूजा करने की कथा न० ११३ आराधना कथा कोश में हैं। सोमदत्त माली प्रति दिन जिन पूजा करता था। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण हैं जो शूद्रों के पूजाधिकार को स्पष्ट प्रगट करते हैं।

दूसरी यह है कि आप शूद्र का क्षुल्लक होना स्वीकार करते हैं। तब उसके द्वारा पूजा करना कौनसी बड़ी बात है? जब कि पूजा बंध का कारण है तब क्षुल्लक दीक्षा निर्जरा की कारण है। अब विचार करिये कि जो आदमी निर्जरा के कारणों को तो करता है वह बंध के कारणों को क्यों नहीं कर सकेगा? निर्जरा के निमित्त से बंध का निमित्त हर हालत में छोटा है।

इसी प्रकार स्त्रियां भले ही पांचवें गुण स्थान ऊपर नहीं जा सकतीं फिर भी उन्हें पूजाधिकार तो प्राप्त ही है। तब आपने जो शूद्रों और स्त्रियों की धर्ममर्यादा बता कर उसके द्वारा दस्साओं के पूजाधिकार का निषेध करना चाहा है वह कहां तक उचित है? धर्ममर्यादा तो अनेक तरह की हो सकती है, मगर ऐसी कोई भी धर्ममर्यादा नहीं है जिसमें से दस्साओं को पूजा करने की मनाई की गई हो।

(६) युक्ति—विकलांगी, अकुलीन, जाति पतित, बौने, रोगी इत्यादि को जिन पूजा करने का निषेध है।

निराकरण—इससे भी दस्साओं का पूजाधिकार नहीं छीना जा सकता कारण कि उक्त बातें दस्सा-बीसा दोनों में हो सकती हैं। दूसरी बात यह है कि यह निषेध आज्ञा आप किस शास्त्राधार से बता रहे हैं? आपकी पूरी पुस्तक में कहीं भी शास्त्राज्ञा तो बताई ही नहीं है। अब मैं ही बतलाता हूं कि विकलांगी आदि

को पूजा करने का निषेध कहां पर किया है यह निषेध वाक्य पूजासार, धर्मसंग्रह श्रावकाचार और प्रतिष्ठासार आदि में एकसा है। यथा:—

न हीनाङ्गो नाऽधिकाङ्गो न प्रलम्बो न वामनः।
न कुरूपी न मूढात्मा न वृद्धो नातिबालकः॥ १५१
न क्रोधादि कषायाढ्यो नार्थार्थी व्यसनी न च।

—धर्मसंग्रह श्रावकाचार।

अर्थात्—जो अंगहीन न हो, अधिक अंगधारी न हो, लम्बे या छोटे कद का न हो, न कुरूप हो, न मूढ़ हो, न वृद्ध हो, न अति बालक हो, न क्रोधादि कषाय वाला हो। वही पूजकाचार्य हो सकता है।

इसी प्रकार के अनेक गुण बताये गये हैं। आपने भी जो ६वीं युक्ति में लिखा है वह भी इन्हीं में से किसी के आधार पर लिखा मालूम होता है। किन्तु विरोधी सज्जनों को मालूम होना चाहिये कि यह निषेध वाक्य नित्य पूजक के लिए नहीं किन्तु पूजकाचार्य-प्रतिष्ठाकारक-प्रतिष्ठाचार्य के लिये है। उन श्लोकों की रचना करते हुये पहिले स्पष्ट लिखा है कि "इदानीं पूजकाचार्य लक्षणं प्रतिपाद्यते।" यदि यह निषेध सर्व साधारण के लिये माना जाय तो कोई भी पूजा नहीं कर सकेगा। कारण आज ऐसा कोई विरला ही जैन होगा जो धर्म संग्रह श्रावकाचार में कहे गये सर्व गुणों से युक्त हो। अतः पूजकाचार्य के लक्षण को सामान्य पूजक के साथ लगा कर दस्साओं के पूजाधिकार को हड़प कर जाने की मनोवृत्ति ठीक नहीं है।

(१०) युक्ति—पांच वर्ष के बालक को, रजस्वला स्त्री को, सूतक के समय कुटुम्बियों को पूजा करने से रोकना पाप नहीं है।

निराकरण—उसी प्रकार दस्साओं को पूजा से रोकना शायद लेखक की दृष्टि में पाप नहीं है। किन्तु बालक को अज्ञान होने के कारण रोका जाता है, रजस्वला को साक्षात् अशुचि के कारण रोका जाता है और कुटुम्बियों को भी सूतक पातक की अपवित्रता के कारण रोका जाता है जो कि शास्त्रीय आज्ञा और बुद्धि गम्य होने के कारण उचित ही है, मगर दस्साओं को पूजा से रोकने में न तो कोई शास्त्रीय आज्ञा है, न कोई बुद्धिगम्य तर्क है और न उनमें बीसाओंसे अधिक कोई अपवित्रता ही है। फिर उन्हें रोकना पाप क्यों नहीं है ? अपने ही समान दस्सा भाइयों को पूजा से रोकना घोर पाप का बंध करना है। यदि कोई महाशय जाति पतितों को दस्सा मान रहे हों तो उन्हें भी पूजा से नहीं रोका जा सकता। प्रत्युत पाप का प्रायश्चित देकर उन से अधिक पूजा करानी चाहिये। यही शास्त्रीय मार्ग है।

(११) **युक्ति**—जैनी वही है जिसे जिन मत में श्रद्धान हो; जिनाज्ञा का उल्लंघन न करता हो। जिनाज्ञा न मानने वालों की वृद्धि से जैनों की संख्या वृद्धि मानना भूल है। हीन जाति वाला मर्यादा के भीतर धर्म धारण कर सकता है, मगर उससे रोटी बेटी व्यवहार नहीं हो सकता। यह सम्भव है कि हीन जाति वाला उच्च जाति वाले से भी अधिक पुण्य बंध कर सकता है। धर्महीनों को मिलाकर संख्या बढ़ाने वाले में बुद्धिमानी नहीं है। जहां घोड़े नहीं होते वहां खच्चर को ही घोड़ा मानना कार्यकारी नहीं है। जो जाति पतित लोग जिनाज्ञा का उल्लंघन करके जिन पूजा करना चाहते हैं वे जैनी कदापि नहीं हैं। ऐसे लोगों को जैनों में गिनकर संख्या की वृद्धि बताना दूसरों को भ्रम में डालना है।

निराकरण—यह सत्य है कि जिन मत में श्रद्धा रखने

वाला ही जैनी हो सकता है। किन्तु दस्साओं को जिनमत का श्रद्धानी क्यों न माना जाय ? जितनी श्रद्धा बीसा भाइयों को जैनधर्म में है उससे कम श्रद्धा दस्सा भाइयों को नहीं है। श्रद्धा का विषय बहुत सूक्ष्म है। जब कि प्रायः सभी दस्सा भाई जिनाज्ञा को मानते हैं तब उनकी संख्या से जैनों की संख्या वृद्धि मानना गौरव की बात है। वे लोग जिनाज्ञा को नहीं मानते हैं इसका क्या प्रमाण है ? यदि कोई कहे कि उन्हें पूजाधिकार नहीं है, फिर भी वे पूजा करना चाहते हैं तो कहना होगा कि किसी भी शास्त्र में दस्साओं को पूजा करने की मनाई नहीं है। इसलिये जो उन्हें पूजा से रोकते हैं उन्हीं की श्रद्धा में सन्देह हो जाता है।

लेखक ने स्वयं लिखा है कि हीन जाति वाला भी धर्म धारण कर सकता है। किन्तु यह कौन आग्रह करता है कि उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार भी चालू कर दो ? कम से कम दस्सा भाइयों को पूजा से तो नहीं रोकना चाहिये। मैं यह पहिले ही सप्रमाण लिख चुका हूं कि उन्हें पूजा करने का पूर्ण अधिकार है। तब उन्हें रोकने वालों को जिनाज्ञा में अश्रद्धानी कहा जाय या पूजकों को ?

यह तो सभी मानते हैं कि धर्महीनों को मिलाकर संख्या वृद्धि करना बुद्धिमानी नहीं है, किन्तु धर्महीनों को धर्म का मार्ग बताकर अपने में शामिल करना तो बुद्धिमानी है। भगवान महावीर स्वामी ने तथा अनेक जैनाचार्यों ने अगणित धर्महीनों को धर्म मार्ग बताकर अपने में मिलाया था। यदि विरोधियों की दृष्टि में दस्सा भाई धर्म हीन हैं तो उनकी धर्म हीनता हटा कर अपने समान बनाना चाहिये। यही बुद्धिमानी है। किसी धर्महीन व्यक्ति में धर्म स्थापन करना असंभव तो है नहीं, किन्तु यह तो विधेय

मार्ग है। ऐसा न करके मात्र पूर्व वासनानुसार किसी समूह को सदा के लिये धर्महीन बनाये रखना बुद्धिमानी नहीं है।

दस्सा बीसाओं में खच्चर और घोड़े जैसा भेद नहीं है। लेखक का पुस्तक लिखने का उद्देश्य दस्साओं को पूजा का अनधिकारी बताना ही था तो उसे अपनी पुस्तक में अपने मन्तव्य को ही पुष्ट करनेवाली युक्तियां देनी चाहिये थी किंतु खेद है कि उसने उद्देश्य को भूलकर बहुत कुछ असंवद्ध कथन किया है। और खींच खांचकर परम्परा से दस्साओं के साथ उसे जोड़ने का असफल प्रयत्न किया हैं।

मैं अथवा कोई भी यह नहीं चाहता कि घोड़ों के अभाव में खच्चरों को ही घोड़ा मान लिया जाय किन्तु हम यह भी नहीं कहते हैं कि किसी कमजोर घोड़े को अपनी जमात में से निकालकर उसे खच्चर करार दिया जाय और उसे फिर खाना पीना न देकर यों ही मरने दिया जाय। बुद्धिमान का कर्तव्य है कि यदि कोई घोड़ा बीमार है, उसमें कोई खराबी आगई है तो उसकी दवा की जाय, उस खराबी को दूर किया जाय और उसे खिला पिलाकर तन्दुरुस्त बनाया जाय। यदि कोई सहीस अपने कमजोर घोड़े की सेवा न करके उसे खच्चर या गधा कहने लगे तो उसकी वह मूर्खता होगी।

विरोधी लेखक जाति पतितों को पूजा करने के कारण उन्हें जैनी नहीं मानता। किन्तु खेद है कि वह अपने इन निजी विचारों की पुष्टि में कोई भी प्रमाण नहीं दे सका है। अब तनिक स्थिर बुद्धि से विचार करिये। जाति पतित वही होगा जिसने व्यभिचार किया हो, जो अनाचारी हो, पापी हो या अन्य अन्य प्रकार के दुष्कर्म करता हो। किन्तु ऐसे पापों का दस्सा भाइयों में

आरोपण करना और उन्हें सिद्ध करना उतना ही कठिन है जितना कि बीसा भाइयों में। और फिर यदि किसी वर्ग को ऐसे पाप करने वाला मान भी लिया जाय तो उसे पूजाधिकार से सदा के लिये वञ्चित कर देना कहां की बुद्धिमानी है। शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि जो अनाचारी-व्यभिचारी थे उन्हें भी किसी ने जिन पूजा से नहीं रोका। ऐसे अनेक प्रमाण आगे दिये जायंगे। उन्हें देखिये और बताइये कि आपके पास इसका क्या समाधान है?

आपने लिखा है कि जो जिनाज्ञा का उल्लंघन करके पूजा करना चाहते हैं वे जैनी कदापि नहीं हैं। किन्तु यहां यह निर्णय करना है कि जिनाज्ञा का उल्लंघन पूजा करने वाले दस्सा भाई कर रहे हैं या उन्हें पूजा से रोकने वाले बीसा भाई पहिले जो दस्सा-बीसा केस चल चुका है उसके अन्तिम फैसले में भी स्पष्ट लिखा है कि "जैन शास्त्रों के आधार से दस्सा और प्रत्येक आदमी जैनधर्म पालन कर सकता (इसीलिये वे पूजा के भी अधिकारी हैं) किन्तु दस्साओं को पूजा करने का खतौली में रिवाज नहीं है"

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि दस्साओं को पूजा करने की शास्त्राज्ञा तो है, मगर रिवाज के सामने शास्त्रों की कोई कीमत नहीं है। ऐसी स्थिति में बताइये कि जिनाज्ञा का उल्लंघन कौन कर रहा है। और फिर तब जैनी कहलाने के अधिकारी कौन नहीं हैं। गुरु गोपालदास जी ने उस मुकद्दमे में डंके की चोट यह सिद्ध कर दिया था कि दस्साओं को पूजा करने का शास्त्रीय अधिकार है। फिर भी मात्र रूढ़ि का ध्यान रखकर उन्हें रोका जाता है और इतने पर भी उन्हें ही जिनाज्ञा लोपी बताया जाता है। यह कहां का न्याय है?

(१२) युक्ति—हीनाचारी को जाति से इसलिये प्रथक् किया जाता है दूसरे पुरुष उसके संसर्ग से बचे रहें। जैसे डाक्टर गले हुये अंग को काट डालता है।

निराकरण—डाक्टर उस अंग को काटता है जिसका सुधरना असंभव होता है। उसी तरह उन लोगों को प्रथक् करना चाहिये जिनका सुधरना असंभव हो। किन्तु जो सुधर सकते हैं उनको भी सदा के लिये प्रथक् कर देना कहां की बुद्धिमानी है ? यदि हीनाचारियों का इस प्रकार बहिष्कार किया जाता होता तो हजारों पापियों का उद्धार कैसे होता। इसलिये चाहे दस्सा हो या बीसा, जो हीनाचरणी हो उसे सुधार कर धर्म में स्थित करना चाहिये। इसीलिये तो कहा है कि "भृष्टानां स्वपदात्तम स्थापनं तत्पदे पुनः।" इस आगमाज्ञा की ओर क्यों ध्यान नहीं दिया जाता।

(१३) युक्ति—जिनाज्ञा का उल्लंघन करके उत्सूत्र मार्ग को यदि उदारता मानी जाय तो आपका बच्चा आपकी आज्ञा को नहीं मानता तब उसे धमकी क्यों देते हो।

निराकरण—जिनाज्ञा का उल्लंघन पूजा से रोकने वाले कर रहे हैं या पूजा करने की शुभ भावना रखने वाले। सो यह निष्पक्ष भाव से ही ज्ञात होगा हां, यदि किसी समुदाय की अनुचित आज्ञा का भंग भी किया जाय तो वह पुण्य है, पाप नहीं। बालक यदि अपने माता पिता की अनुचित (बाल विवाह, अन मेल विवाह करने की या पढ़ने से रोकने आदि की) आज्ञा का उल्लंघन करता है तो वह क्या बुरा करता है। ऐसा धर्म धर्म ही नहीं हो सकता जो अपने अनुयायियों को अपनी पूजा से रोके। जैनधर्म किसी भी जैन को जिन पूजा से नहीं रोकता। यही तो उसकी उदारता है।

समझ में नहीं आता कि सहारनपुर की दिगम्बर जैन पंचायत ने क्या विचार कर बड़ौत के जैनों के आदर्श कार्य का विरोध किया है। और उनके धर्म संगत कार्य को धर्म विरुद्ध घोषित किया है। पंचायत ने यह भी घोषित किया है कि "मन्दिर में दस्सों को पूजन प्रक्षाल का कोई अधिकार नहीं है और न ऐसा अधिकार किसी के दिये जाने से दिया जा सकता है। इस बात की पुष्टि समाज और शासन की ओर से हो चुकी है।"

समझ में नहीं आता कि सहारनपुर की समाज ने यह यथेच्छ कथन किस आधार से किया है ? वह अपनी समाज और शासन (कोटि) की दुहाई तो देती है मगर उसे जिनशासन भी आज्ञा का ध्यान नहीं है। जिनशासन में तो पापी से पापी और पातकी से पातकी, हिंसक, चोर, व्यभिचारी, घातकी लोगों तक को जिन पूजा से नहीं रोका है। किन्तु ऐसे प्राणी जिन पूजा करके शुभगति में गये हैं। शास्त्रों में इसके समर्थक सैकड़ों प्रमाण भरे पड़े हैं, जब कि दस्साओं को पूजा का अनधिकारी बताने वाली पचायत के पास कोई प्रबल शास्त्रीय प्रमाण नहीं हैं। यदि प्रमाण होते तो उसे अपनी पुस्तक में प्रगट करने चाहिए थे। किन्तु वह ऐसा नहीं कर सकी है और मात्र १० पेज की प्रमाणहीन पुस्तिका लिख कर ही संतोष मान लिया है।

शास्त्रीय उदाहरण ।

एक तो यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि दस्सा भाई बीसाओं से हीन कोटि के हैं या पतित हैं। फिर भी यदि थोड़ी देर के लिये विरोधियों की मान्यतानुसार मान भी लिया जाय तो नीचे लिखे हुये प्रमाणों से यह सिद्ध होजाता है कि पतित से पतित व्यभिचारी, अनाचारी और लम्पटी मनुष्यों को भी पूजा करने का पूर्ण अधिकार रहा है और उन्हें किसी ने भी पूजा से नहीं रोका है। कारण कि वे जैन थे। किसी भी जैन को कोई भी पूजा करने से नहीं रोक सकता।

बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तों में व्यभिचार जातों को या ऐसे ही पाप करने वाले जाति पतितों को दस्सा या बिनैकावार कहा जाता है। ऐसे दस्साओं के पूजाधिकार सम्बन्धी तो क्या दीक्षा लेने तक के और उनके समाज मान्य होने के भी अनेक उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। तनिक इन्हें ध्यान देकर देखिये।

(१) राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया जिससे कर्ण उत्पन्न हुये। यथा—

"पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः।"

—हरिवंश पुराण ४५-३७

ऐसी अवस्था में कुन्ती, पाण्डु और कर्ण तीनों दस्सा ठहरते हैं। फिर भी वे श्रावक थे। दर्शन, पूजा करते थे और समाज ने उनका कोई बहिष्कार नहीं किया। यहां तक कि व्यभिचारोत्पन्न दस्सा कर्ण ने दिगम्बरी मुनि दीक्षा धारण की थी। क्या मुनि-दीक्षा लेने का अधिकारी जिन पूजा के योग्य नहीं है?

(२) भगवान नेमिनाथ के काका वसुदेव ने व्यभिचारजात एणी पुत्र की कन्या प्रियंगु सुन्दरी से विवाह किया था। फिर भी उन्हें किसी ने पूजा से नहीं रोका। इतना ही नहीं किन्तु उनके साक्षात् नेमनाथ भगवान के समवशरण में जाकर पूजा की थी और प्रियंगु सुन्दरी (दस्सा) ने जिनदीक्षा ली थी।

(३) राजा सुमुख ने वीरक सेठ की पत्नी बनमाला को जबरदस्ती रख लिया और उससे काम सेवन करता रहा। इसलिये वह आज कल की परिभाषा में दस्सा हो गया। फिर भी उन दोनों ने मुनिराज को आहारदान देकर पुण्य सञ्चय किया, जिससे वे दोनों विद्याधर विद्याधरी हुये। जो मुनिदान दे सकता है उसे पूजाधिकार तो स्वतः सिद्ध है।

(४) चारुदत्त वेश्या सेवीथे और अन्त में वेश्यापुत्री से विवाह तक किया। इसलिये वे दस्सा हो गये। फिर भी वे जिन पूजा करते थे और अन्त में उनने मुनि दीक्षा भी ली थी। समाज में उनका जो आदर था वह बड़े बड़े राजा महाराजाओं का भी नहीं था। उनका किसी ने बहिष्कार क्यों नहीं किया था।

(५) ज्येष्ठा आर्यिका ने एक मुनि से शील भ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया। इसलिये दस्सा हो गई। किंतु फिर भी आर्यिका की दीक्षा लेली। तब उसका पूजाधिकार भी स्वतःसिद्ध है।

(६) मुनि और आर्यिका के व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले रुद्र दस्सा होकर भी मुनि दीक्षा लेते हैं। तब उनका पूजाधिकार तो स्वतः सिद्धहै।

(७) राजा मधु ने अपनी मांडलीक राजा की पत्नी को जबरदस्ती रखकर उसके साथ विषय सेवन किया। फिर भी वे मुनिदान देते रहे और अन्त में दीक्षा लेकर सोलहवें स्वर्ग में

गये। उनको न तो किसी ने पूजा से रोका और न मुनिदान से ही रोका था।

(८) शिवभूति की पुत्री देववती से शम्भू ने व्यभिचार किया फिर भी उस दस्सा देववती ने हरिकान्ता नाम की आर्यिका के पास दीक्षा ली और स्वर्ग गई। क्या उसे कोई पूजा की अनधिकारिणी कह सकता है।

(९) अंजन चोर वेश्या लम्पटी था, व्यभिचारी था। इसलिये विरोधियों की दृष्टि में वह दस्सा ठहरा। फिर भी अञ्जन चोर मोक्ष में गया। तब क्या उसे कोई पूजाधिकारी नहीं मानेगा। उसे पूजा करने का तो क्या महा मुनियों से भी पुजने का अधिकार हो गया था।

(१०) अग्नि नामक राजा ने अपनी पुत्री कृत्तिका से विवाह किया इसलिये वह दस्सा हो गया। उससे कार्तिकेय पुत्र हुआ। वह भी दस्सा कहा जाना चाहिये। फिर भी उन्हें किसी ने पूजादि से नहीं रोका। इतना ही नहीं किन्तु वह व्यभिचार जात (दस्सा) कार्तिकेय दिगम्बर मुनि हो गया। और उनके बनाये ग्रन्थ आज जैन समाज में आदर से माने जाते हैं तथा उन दस्सा मुनिराज को सभी नमस्कार करते हैं।

(११) धनकीर्ति सेठ अनंगसेना वेश्या से आशक्त था। बाद में वह धनकीर्ति (दस्सा) दिगम्बर मुनि हो गया और अनंगसेना वेश्या भी दीक्षा लेकर स्वर्ग गई। क्या कोई मुनि होने वाले वेश्या गामी (दस्सा) धनकीर्ति को पूजा अनधिकारी मानेगा?

(१२) राजा श्रीषेण की पुत्री कनकलता कुमारावस्था में ही अपने फूफा के लड़के महाबल के साथ फंस गई थी। फिर भी दोनों (दस्साओं) ने मुनिगुप्त नाम के मुनिराज को आहार दान

दिया। उन्हें आहारदान पूजादि से किसी ने नहीं रोका।

(१३) नागकुमार ने वेश्या पुत्रियों से विवाह किया था। फिर भी उन्हें किसी ने पजादि से नहीं रोका। यहां तक कि वे दिगम्बर मुनि तक हो गये।

(१४) सुदृष्टि सुनार की कथा में व्यभिचार जात (दस्सा) को मुनि होना बताया है। और मोक्षगामी तक लिखा है। क्या उसे पूजाधिकार नहीं था।

(१५) परस्त्री लम्पटी रावण को जिन पूजा से किसी ने नहीं रोका, किंतु पद्मपुराण में उसे अनेक जगह मन्दिरों में पूजा करते हुए वर्णन किया है। यहां तक कि उसने स्वयं ही कई मन्दिर बनवाये थे।

यहां तो विस्तार भय से मात्र १५ ही दृष्टान्त दिये हैं। जन शास्त्रों में ऐसी सैकड़ों उदार कथाएं हैं जिनसे प्रगट है कि वेश्यागामी, व्यभिचारी, लम्पटी, हत्यारे, पापी और अनाचारी लोगों को भी पूजाधिकार रहता था। यहां तो मात्र व्यभिचारियों के ही दृष्टान्त दिये हैं। इसी प्रकार बड़े से बड़े सभी पापों के दृष्टांत मिल सकते हैं।

यदि सच पूछा जाय तो ऐसे लोगों को जब दस्सा करार नहीं दिया गया और उन्हें पूजादि से नहीं रोका गया तब आज कल के सदाचारी और बीसाओं के समान ही शुद्ध दस्सा भाइयों को पूजाधिकार से रोकना सरासर अन्याय है। बुन्देलखण्ड प्रान्त के दस्सा (विनैकावार) भाइयों की अनाचार परम्परा का तो कुछ ज्ञान भी है, किन्तु सहारनपुर, बड़ौत, खतौली आदि की तरफ जो दस्सा भाई हैं उनकी आचरण हीनता का कोई भी प्रमाण नहीं है। फिर भी उन्हें अपने से हीन

और पूजा का अनधिकारी मानना जैन धर्म का ह्रास करना ही है।

जैनधर्म तो बहुत ही उदार धर्म है। यदि कोई स्वयं या उसकी कुल परम्पराका कोई पूर्वज दूषित भी हो तो भी उसके लिये धर्म का मार्ग बन्द नहीं करना चाहिये किन्तु आगम कथाओं से कुछ पाठ लेकर उन्हें पूजा प्रक्षाल आदि की छूट देकर शुद्ध करना चाहिये। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने स्पष्ट लिखा है कि:—

दर्शनात् चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते॥ १६॥

रत्नकरण्ड श्रा०॥

अर्थात्-दर्शन या चारित्र से डिगते हुये भ्रष्ट होते हुये भाइयों को पुनः धर्मात्माओं द्वारा उसी में स्थिर किया जाना स्थितिकरण अंग है।

इस स्थितिकरण अंग पर विचार न करके अपने साधर्मी निर्दोष भाइयों को सदोष बता कर उन्हें धुतकारना और पूजादि धर्मसाधन से रोकना कैसा धर्मात्मापन है? इन्हीं करतूतों से रुष्ट होकर मात्र बड़ौत के ही ३० दस्सा दिगम्बरजैन घर श्वेताम्बर हो गये हैं। एक बार प्रयत्न करके, उन्हें पूजा प्रक्षाल का अधिकार दिया गया था इस लिये वे पुनः दिगम्बर धर्म में आगये थे। मगर खेद है कि कुछ लोगों ने सरकारी शरण लेकर उनके जन्म सिद्ध अधिकारों को फिर से रुकवा दिया। परिणाम स्वरूप वे फिर श्वेताम्बर जैन होगये। यदि उन्हें पूजा प्रक्षाल का अधिकार दे दिया जाय तो वे अभी भी दिगम्बर धर्म में आने को तैयार हैं। मगर खेद है कि बीसा भाई अभी भी इस उदार युग में उनका विरोध कर रहे हैं और दस्सा भाइयों को विधर्मी होने के लिये मार्ग खुला कर रहे हैं।

भला विचार तो करिये कि जो जैन है, श्रावक के धर्म पालता है, शास्त्रीय दृष्टि से भी पूजादि का अधिकारी है उसे यदि देव पूजा न करने दी जाय तो वह विचारा क्या करेगा ? कहां जायगा ? वह उस धर्म में क्यों रहेगा ? समझ में नहीं आता कि हमारे विरोधी भाई इस सीधी और सरल बात को क्यों नहीं समझते हैं ? मैं उन विरोधी बन्धुओं से सानुरोध प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरी इस पुस्तक पर स्थिरतापूर्वक विचार करें और सोचें कि मेरा कहना, नहीं नहीं, शास्त्रों का कहना सत्य है वा आपका कहना सत्य है ? अब वह युग गया जब मात्र पंच सरदारकी हां में हां भरदी जाती थी। अब तो विचारक युग है। अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से विचार करिये, अन्तःकरण की आंख खोल कर सत्य को देखिये और धर्मवात्सल्य से ओत प्रोत होकर अपने बिछुड़े हुए दस्सा भाइयों को छाती से लगाइये तथा उनके साथ मिल कर जिन भगवान की पूजा करिये। यही धर्म प्रभावना है, यही वात्सल्य है और यही मानवता की पहिचान है।

निवेदकः—

चन्दावाड़ी-सूरत
१५-११-३५

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ